भारतीय संदर्भ में प्रस्तावना

कुछ अलग तरह से बच्चों की परवरिश का पहला पाठ मुझे ''साधना फॉरेस्ट'', ओरोविल में पढ़ने *(सीखने)* को मिला था। एक दिन दौपहर मैं और ओशेर, अविराम-योरित की तीन वर्षीय बेटी के साथ बैठा *सेंक्चुरी कब* के पन्ने पलट रहा था तभी एक तस्वीर की तरफ उंगली उठाकर ओशेर बोली, ''ओ दिस इज केट'' (''ये तो बिल्ली है'')। ''नो दिस इज टाइगर'' (''नहीं ये तो बाघ है''), तत्काल मैंने कहा। तभी पास ही बैठी योरित ने मुझे टोका और कहा ''एज शी हेज ओनली सीन द केट, शी इज राइट ...'' (''क्योंकि उसने अभी तक सिर्फ बिल्ली को ही देखा है, वो बिल्कूल ठीक है ...''), मतलब कि जब तक वो न पुछे, उसे कुछ मत बताओ। योरित का यह कहना मेरे लिये बिल्कुल ही अलग तरह का अनुभव था जबकि मैं स्वयं उस वक्त दो बच्चों का पिता था। शाम को इस विषय पर मेरी काफी विस्तृत चर्चा अविराम से हुई।

अगले ही दिन जब संध्या को हम सुर्यास्त देख रहे थे तभी ओशेर दौड़ती हुई आई और मेरे पेर से उलझकर गिर पड़ी और रोने लगी। जब मैं उसे चुप कराने लगा तभी योरित कहने लगी नहीं-नहीं, अगर वो रो रही है तो उसे रोने दो, उसे वाकई में दर्द हो रहा होगा और वह सिर्फ सही कारण से ही रोती है। मैं फिर से अवाक रह गया। मैं जीवन में पहली बार किसी ऐसी माँ से मिल रहा था जिसे मालुम है कि उसका बच्चा सही कारण से रो रहा है। वहाँ अपने आठ दिनों के प्रवास के दौरान मैंने ओशेर को अपने हाथों से खाते, पूरे दिन खेलते और हर उम्र के लोगों से बिना किसी हिचकिचाहट के मिलते और

खेलते देखा। इस दौरान अविराम द्वारा बताई गई पुस्तकों में से एक जिन लिडलॉफ की *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* भी थी।

पहले, करीब एक वर्ष पूर्व अविराम और योरित से डियर पार्क, हिमाचल प्रदेश में लर्निंग सोसायटीज (अन) कान्फरेंस और फिर उनके इन्दौर प्रवास के दौरान मुलाकात हुई। ओशेर अब ग्यारह वर्ष की हो गई है तथा उसकी एक तीन वर्षीय छोटी बहन भी है, शैलेव। यहाँ भी मैंने दोनों को ही हमेशा शांत, सहज और खुशमिज़ाज पाया और रोते या किसी तरह की जिद करते नहीं देखा, और दोनों को हर उम्र के लोगों के साथ घुलते-मिलते देखा।उनके इन्दौर में तीन दिनों के प्रवास के दौरान मैं और शैलेव किसी पुराने दोस्त की तरह रहे। दोनों ने ही ''स्कूल'' नाम के ''जीव'' को आज तक नहीं देखा है और ओशेर अभी तक पढ़ना और लिखना भी ठीक से नहीं जानती है – हमारी तथाकथित *सभ्य* मानसिकता में वह अनपढ़ और गंवार भी कहलाई जा सकती है।

चूंकि मैं भी अब *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* पुस्तक पढ़ चुका हूँ, इसलिये मुझे यह कहने में बिल्कुल भी संकोच नहीं है कि दोनों ही बच्चे ''सातत्य'' की कसौटी पर एकदम खरे हैं। स्वयं अविराम एवं योरित का *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* के बारे में कहना है:

> जब हमने पहली बार *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* पुस्तक पढ़ी थी तब हमारा पहला बच्चा अभी जन्मा नहीं था, और यह शायद अच्छा ही हुआ। अब हम एक अलग तरह के पालकत्व का अनुभव करने के लिए तैयार थे। हमने जब से यह किताब पढ़ी है, हमारी खुद की अपने आप से समझ और दूसरों के साथ बरताव के तरीकों में आमूल-चूल परिवर्तन आया है।
>
> किताब पढ़े हुए हमें बारह वर्ष बित गए हैं और हमारी एक बेटी ग्यारह वर्ष की है। अपने सातत्य की समझ के साथ बच्ची का पालन-पोषण हमारे लिये एक बहुत ही सुखद और परिपूर्ण अनुभव रहा है। हमें हमारे कई पुराने तौर-तरीके भुलाने पड़े और नए अपनाने पड़े। *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* हमारे अंदर बिना शर्त प्यार की भावना प्रस्फुटित करने में भी मददगार रही है।
>
> यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि हम अपने सहजबोध से इतना दूर हो गए हैं कि अब हम इंसानों को इंसान जैसा व्यवहार करना भी एक पुस्तक से सीखना पड़ रहा है। पर अगर कोई पुस्तक है जो ऐसा कर सकती है तो निश्चित

ही वह *''द कन्टीन्यूअम कांसेप्ट''* है।

हम सभी पुस्तक पढ़ने वालों को एक प्यार भरा और हमेशा ही याद रखने लायक पालकत्व की कामना करते हैं।

प्यार सहित,
योरित और अविराम,
साधना फॉरेस्ट,
ओरोविल, तामिलनाडु

ऐसे ही एक पालक हरि और शिल्पा ने भी अपनी बेटी माया की परवरिश अपने अंदर की आवाज़ के साथ और सातत्य की रोशनी में की है। जब मैंने उन्हें पुस्तक के लिए विस्तार से अपने अनुभव बताने को कहा तो उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार करते हुए बताया:

पुस्तक ने शिशु के लालन-पालन को लेकर हमारे प्रत्येक पुर्वविचारित मत को चुनौती दी है। कई सारी बातें जो मेरे और मेरे पति हरि के मन में पहले से ही बैठी हुई थी: जैसे शिशु को अस्पताल में जन्म देना, टीका लगाना, पालने और बच्चा गाड़ी का उपयोग, छ: माह पश्चात कुछ ठोस आहार देना, बारह मास का होने पर माँ का दुध छुड़वाना, अनुशासन, प्ले स्कूल, नर्सरी स्कूल – हमने अपने आपको हमारी सोच के प्रत्येक पहलु पर प्रश्न करते पाया। न सिर्फ पुस्तक द्वारा दर्शाये गये मापदंडों के आधार पर इसका मुल्यांकन किया वरन साधारण सच के विशाल ढाँचे के इर्दगिर्द भी जाँचा-परखा। क्या ये अभ्यास, मत, रीतिरिवाज़ शिशु की प्राकृतिक जैविक जरूरतो का भी सम्मान और पोषण करते हैं? अगर ऐसा है तो ये हमारे जीवन के भी अंग बनते गये, यदि नहीं और ये सिर्फ हमारी सुविधा के अनुसार हमारे सांस्कृतिक मापदंडों द्वारा हम पर थोपे गये थे तो हमने इन्हें एक सिरे से खारिज़ कर दिया।

अब जबकि हमारे सारे निर्णय इसी सातत्य की रोशनी के इर्दगिर्द लिये जा रहे हैं, हमारी ज़िन्दगी सरल होने के साथ-साथ जटिल भी होती गई। अस्पताल में शिशु को जन्म न देने का मतलब था अपने ही शहर में एक दाई को ढुँढना। हमें एक बहुत ही अच्छी दाई मिल तो गई लेकिन हमारे शहर से दूर, पास ही के

राज्य गोआ में। इसलिये हमें अपनी बेटी माया को जन्म देने के लिये दो माह के लिये गोआ में ही रहना पड़ा। टीके लगाने या न लगाने के विवाद को खत्म करने के पहले हमें ढेर सारे कागजों, इन्टरनेट और अन्य सामग्रियों को टटोलना पड़ा, उन्हें पढ़ने की ज़हमत उठानी पड़ी तथा साथ ही शिशु रोग विशेषज्ञों और होमियोपेथ से आक्रामक मुठभेड़े करनी पड़ी। अन्त में हमने किसी भी प्रकार का टीकाकरण न करने का निश्चय किया। (यद्यपि हमने उसे पोलियो की दवा पिलाई जब वह 18 माह की थी। चूंकि हमारा एक पारिवारिक मित्र पोलियो से ग्रसित है – रोग से इतनी नजदीकी ने हमारे इस निर्णय में काफी बड़ा भाग अदा किया।)

कभी-कभी हमें उपहास का पात्र भी बनना पड़ता था। लिडलॉफ के शिशु को गोदी में उठाये रखने के विचार से हम भी सहमत थे। इसलिये अपनी बच्ची को हम हर समय अपने साथ ही रखते थे, चाहे वो सो रही हो, जग रही हो और जो भी आगन्तुक हमारे यहाँ पर आता उसे हमारा यह व्यवहार बड़ा हास्यास्पद और बेतुका लगता। मुझे एक हाथ से बांये कंधे पर माया को उठाये हुए, और दुसरे से खाना खाते हुए और हिलते डुलते बातचीत करते देख वे हैरान-परेशान हो जाते। हमें हमेशा ही यह चेतावनी दी जाती रही कि ''तुम बच्ची को बिगाड़ रहे हो'' या फिर ''ध्यान रहे, एक दिन तुम्हे पछताना पड़ेगा।''

परंतु इस अर्थ ने हमें बेहद मज़बुती प्रदान की। जब भी उसे बिस्तर पर लिटाया गया वह सोने के दौरान काफी तनावपूर्ण रही और उसकी लगातार गुर्राहटों और कराहटों ने हमें कई बार अधबीच में खाना छोड़ने को बाध्य किया और कई बार स्नान, रसोई का कामकाज छोड़ कर अनमनेपन से उसकी पीठ थपथपाने जाना पड़ा ताकि वो फिर से आराम से सो जावे। इसके विपरित जब भी उसे उठाकर शरीर की उष्मा के साथ रखा गया वह हमेशा ही देर तक और चिर निद्रा में सोई और हम बड़ी शांति से हमारे रोज़मर्रा के काम निपटा पाते अर्थात एक हाथ से ही। (हमें ऐसा लगता है कि अगर हमने पीछे की और एक कपड़े का झुला लटका कर उसे रखा होता तो हमें ज्यादह सहूलियत रहती। इस स्थिति में हम हमारे दोनों हाथों को खाली रखते हुए आसानी से काम कर सकते थे। ऐसा न कर पाने का कारण यह था कि हम कपड़े के पोतड़ों का उपयोग कर रहे थे और शुरूआती तीन माह में हमारी बच्ची ने प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह बार पोतड़ा गंदा किया था।)

इस गोदी में उठाये जाने के अनुभव और जब भी उसे ज़रुरत महसुस हो स्तनपान कराने ने हमें एक बेहद संतुष्ट और खुशमिज़ाज बच्ची दी और वो ही आगन्तुक जो हमें लगातार चैतावनियाँ देते थे, कहने लगे कि ऐसी बच्ची को देखना सच में दुर्लभ है जो रोती नहीं है। यद्यपि ऐसे लोग बहुत सारे नहीं थे।

सबसे महत्वपूर्ण पाठ जो हमने इस पुस्तक से पढ़ा वो था परिवार में रहते हुए अपनी ही बच्ची को एक अलग *''जीव''* के रूप में देख पाना जिसकी अपनी ज़रूरतें और अपनी सोच हो। सिर्फ *पराश्रित* और *निष्क्रिय* बच्ची नहीं जिस पर कि हम अपनी इच्छाओं को लादते रहें, उसके दोषों को ठीक करते रहें और उसे जितना जल्दी हो सके ''स्वतंत्र'' बना दें ताकि वह हमारे रोजमर्रा के कामों में कम से कम व्यवधान उत्पन्न करे। मैं और मेरे पति हरि इस पहलु को लेकर हमेशा ही सचेत रहे। कई बार ऐसा मोका भी आया जब हमे प्यार से एक दूसरे को इस बारे में स्मरण दिलाना पड़ा। हमारे घर में सिर्फ एक ही नियम था – सिर्फ उसी दशा में मना करना जो हमें या बच्ची को कोई नुकसान पहुँचाए। अगर इस आधार पर जाँचे तो कई सारी चीजें जो हमारे शहरी समुदायों में वर्जित है वो हमारे घर पर एक दम ठीक है। दीवार पर चित्रकारी, भोजन के साथ खेलना, ज़मीन पर लिखना, आटे से स्नान करना, सुबह तीन बजे नहाना, बारिश में भिगना, चार साल तक स्तनपान, वयस्कों को उनके नाम से बुलाना, नंगे ही घुमना, नाश्ते की जगह आइसक्रिम खाना ... सभी कुछ स्वीकार्य है। किन्तु, माया की अपनी सहज बुद्धि पर विश्वास की योग्यता अपने आप में कई सुन्दर रूपों में प्रकट हुई है। हमने कभी भी उसके खाने-पिने के नाज़ नखरे नहीं महसूस किये जो कि ज्यादातर अभिभावक रोज महसूस करते हैं। माया ठीक से खाती है और उतना ही जितनी उसे ज़रुरत हो। यह बात चाकलेट के साथ भी उतनी ही सच है, जब भी किसी मेहमान द्वारा उसे चाकलेट दी जाती है वो उतना ही खाती है जितनी उसकी ईच्छा हो और बाकि वो फ्रिज में रख देती है। चार साल की उम्र में वो चाकु का उपयोग करने में पूर्णतया सक्षम है – काटना, छिलना, किसना आदि सहजता और कुशलता से कर सकती है। उसे मालुम है कि अपने मस्तिष्क का कब और कैसे उपयोग करना है और यह भी कि समस्या पर कैसे चिंतन करना और फिर उससे निपटना। वह अभी से अपने मन में इस बात पर दृढ़ है कि कम से कम 83 वर्ष तक तो वह स्कूल *नहीं* जाना चाहेगी।

परन्तु इस 'विशिष्ट' तरीके से बच्ची का पालन-पोषण करना, एक वयस्क के रूप में हमारे लिये काफी मुश्किल भरा भी रहा। यह सुनिश्चित करने में कि जितना संभव हो सके हमारी बच्ची प्राकृतिक रूप से और अपनी सहज बुद्धि के साथ ही बढ़े हमें एक परिवार के रूप में अलग और थोड़ा सुरक्षित भी रहना पड़ा। हमें हमेशा यह ध्यान रखना पड़ा कि कोई वयस्क उसके साथ व्यर्थ या बेमतलब का वार्तालाप न कर रहे हों। ''तुम्हें कौन ज्यादा प्यार करता है – तुम्हारे पापा या मम्मी'', ''क्या तुम अच्छी लड़की हो या खराब लड़की'', ''इन कपड़ों में तो तुम वाकई बड़ी सुंदर लग रही हो'', ''देखो माया ने तो कितना अच्छा चित्र बनाया है'' या ''तुम्हारी चित्रकारी तो बड़ी भयानक है, तुम कब माया जैसा चित्र बनाना सिखोगी।''

हमारा ऐसा मानना है कि *''सातत्य की अवधारणा''* तब बेहतर काम करती है जब एक पुरा का पुरा समुदाय ही इस अवधारणा पर जीवन यापन कर रहा हो। जहाँ पर वयस्क अपना-अपना काम कर सकें और भिन्न-भिन्न आयु के बच्चे एक साथ खेलते हुए आपस में एक दुसरे का ध्यान भी रखें। परन्तु वास्तविकता यह है कि हम तल्लेदार भवनों में रहते हैं, एक दूसरे से कटे हुए एकल परिवारों में, और उन परिवारों से घिरे हुए जिनके बच्चों के पालन पोषण के सम्बन्ध में भिन्न विचार हैं। इस तरह की परिस्थितियों में पुस्तक की आत्मा के हिसाब से रहने के लिये रोज़मर्रा की चुनौतियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हमने निश्चित ही ऐसे बच्चे के पालन-पोषण का मज़ा लिया है जो रचनात्मक है, सामाजिक है, चंचल है, मिलनसार है और साथ ही संवेदनशील और आत्मविश्वासी भी, परन्तु साथ ही हम इस तथ्य से भी पुरी तरह से वाकिब हैं कि यह यात्रा और भी ज्यादा सुखद होती यदि हम समान विचारों वाले परिवारों के साथ रह रहे होते। तब हमें उसे अशिष्ट आचरण वाले बच्चों, आक्रामक हमउम्रों और असंवेदनशील वयस्कों से सुरक्षित रखने की ज़हमत नहीं उठानी पड़ती। हम अपना ज्यादा समय मिलने जुलने, आनंद से बिताने और ज्यादा रचनात्मक रुचियों में बिताते और हमें इस बात का भी भरोसा रहता कि बच्चा अच्छे लोगों की सोहबत में खेल-कूद रहा है और हमें उसकी रखवाली भी नहीं करनी पड़ती।

हमें यह जानकर वाकई खुशी हुई है कि इस किताब को हिन्दी और कई अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है जो की कई अन्य माता-पिता तक भी पहुँच पाएगी। *''सातत्य की अवधारणा''* एक ऐसी पुस्तक है जो लोगों की ज़िन्दगी को बदल सकती है और वाकई बदल रही है। इसे जरुर पढ़ना चाहिये।

शिल्पा और हरि

* * *

निश्चित ही हमारे पास आज उदाहरण हैं – ओशेर और शैलेव के रूप में, माया के रूप में, और इसके अतिरिक्त और भी कई उदाहरण हमारे प्राचीन और ग्रामीण समाज में बिखरे पड़े हैं। लेकिन जिस तरह से हम हमारे बच्चों को क्रियाशील समुदाय से अलग करके बड़ा कर रहे हैं जहाँ उन्हें सिर्फ अपनी ही उम्र के बच्चों के साथ समय व्यतीत करना है, क्या हम उनके पूर्ण मानव बनने की आशा रख सकते हैं? लेकिन यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे एक पूर्ण मानव बने तो यह किताब एक साधन हो सकती है।

जो जोत जिन लिडलॉफ ने जलाई थी और जिसके वाहक योरित-अविराम एवं शिल्पा-हरि बने हैं उसे और आगे बढ़ाने का जिम्मा *बनियन ट्री* ने लिया है। यह पुस्तक शीघ्र ही मराठी, गुजराती और अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जाएगी। हमें पाठकों के सहयोग की अपेक्षा रहेगी।

दिनेश कोठारी